Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
October to December 2025, E-Journal, Vol. I, Issue LII (52), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

भूगोल में पारिस्थितिकी तंत्र संरक्षण की प्राचीन पद्धतियाँ : भारतीय ज्ञान परंपरा के विशेष संदर्भ में

डॉ. प्रमिला बघेल*

* सहायक प्राध्यापक (भूगोल) शासकीय माधव विज्ञान महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

प्रस्तावना – भारतीय ज्ञान परंपरा में प्रकृति को केवल संसाधन नहीं, बल्कि जीवन का अभिन्न अंग और पूजनीय तत्व माना गया है। प्राचीन भारतीय समाज ने पर्यावरण संरक्षण और पारिस्थितिकी संतुलन बनाए रखने के लिए अनेक ऐसी पद्धतियाँ विकसित कीं, जो आज के सतत विकास के सिद्धांतों से मेल खाती हैं। भूगोल के संदर्भ में ये पद्धतियाँ विभिन्न पारिस्थितिकी तंत्रों वन, जल, भूमि, जैव विविधता तथा जलवायुकृके संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं।

भारतीय ज्ञान परंपरा में प्रकृति को कभी भी खुद से अलग या सिर्फ इस्तेमाल करने की चीज नहीं माना गया, बल्कि उसे परिवार का हिस्सा माना गया है। प्राचीन पद्धतियों में पारिस्थितिकी तंत्र संरक्षण कोई अलग से किया जाने वाला काम नहीं था, बल्कि यह लोगों की रोजमर्रा की जीवनशैली और संस्कृति का हिस्सा था।

भूगोल और पर्यावरण के संदर्भ में प्राचीन भारतीय पद्धतियों को हम कुछ मुख्य भागों में समझ सकते हैं:

1. पंचमहाभूत का सिद्धांत– भारतीय दर्शन के अनुसार, पूरा ब्रह्मांड और हमारा शरीर पांच तत्वों से मिलकर बना है: पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश।प्राचीन ग्रंथों में यह स्पष्ट किया गया है कि यदि इन पांचों तत्वों में से एक भी प्रदूषित या असंतुलित होता है, तो पूरा पारिस्थितिकी तंत्र बिगड़ जाएगा।यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे: जो इस शरीर में है, वही ब्रह्मांड में है। इस सोच के कारण लोग प्रकृति को नुकसान पहुँचाने से डरते थे क्योंकि वे जानते थे कि इसका सीधा असर उन पर ही पड़ेगा।

2. पवित्र उपवन– भारत के विभिन्न क्षेत्रों में वनखंडों को देवताओं से जोड़कर संरक्षित किया जाता था। इन्हें 'देव वन', 'ओरण', 'सरना' आदि नामों से जाना जाता है।इन क्षेत्रों में वृक्षों की कटाई और शिकार निषिद्ध था।जैव विविधता का संरक्षण होता था।स्थानीय जल स्रोतों और मिट्टी की उर्वरता बनी रहती थी।उदाहरण: खासी पहाड़ियाँ के पवित्र उपवन तथा अरावली क्षेत्र के ओरण।पवित्र उपवन ऐसे वन या वृक्षों के समूह होते हैं जिन्हें स्थानीय समुदाय धार्मिक, सांस्कृतिक या पारंपरिक मान्यताओं के कारण पवित्र मानता है। इन स्थानों पर पेड़ों की कटाई, शिकार और अन्य हानिकारक गतिविधियों पर प्रतिबंध होता है, जिससे प्रकृति और जैव विविधता का संरक्षण होता है। पवित्र उपवन में धार्मिक और सांस्कृतिक आस्था से लोग जुड़े होते हैं।पेड़ों की कटाई और वन्यजीवों के शिकार पर रोक भी हो सकती है। स्थानीय समुदाय इनके संरक्षण की जिम्मेदारी निभाता है।अनेक दुर्लभ पौधों और जीवों का सुरक्षित आवास होते हैं। जैव विविधता का संरक्षण करते हैं।जल स्रोतों और मिट्टी की रक्षा में सहायक होते हैं। पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखते हैं।प्राकृतिक और सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण करते हैं।लोगों में प्रकृति के प्रति सम्मान और संरक्षण की भावना विकसित करते हैंपवित्र उपवन प्रकृति संरक्षण का एक प्रभावी पारंपरिक माध्यम हैं। ये न केवल पर्यावरण की रक्षा करते हैं, बल्कि हमारी सांस्कृतिक विरासत और जैव विविधता को भी सुरक्षित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

3. वृक्ष पूजा और वन संरक्षण– भारतीय संस्कृति में पीपल, बरगद, नीम, तुलसी आदि वृक्षों को धार्मिक महत्व दिया गया।वृक्षों की रक्षा सामाजिक और धार्मिक दायित्व बन गई।वनों के अंधाधुंध दोहन पर नियंत्रण रहा।कार्बन अवशोषण और स्थानीय जलवायु संतुलन में सहायता मिली।वृक्ष पूजा भारतीय संस्कृति की एक प्राचीन परंपरा है,जिसमें वृक्षों को जीवनदायी और पवित्र मानकर उनका सम्मान और संरक्षण किया जाता है। इस परंपरा ने लोगों में पेड़ों के प्रति श्रद्धा और जिम्मेदारी की भावना विकसित की है।वन संरक्षण का अर्थ है वनों की रक्षा करना, उनका संतुलित उपयोग करना तथा नए वृक्ष लगाकर वन क्षेत्र को बनाए रखना और बढ़ाना।वृक्ष पूजा केवल धार्मिक परंपरा नहीं, बल्कि प्रकृति संरक्षण का एक प्रभावी सामाजिक माध्यम भी है। यदि इसे आधुनिक पर्यावरण संरक्षण के प्रयासों के साथ जोड़ा जाए, तो वन और पर्यावरण दोनों की सुरक्षा अधिक प्रभावी ढंग से की जा सकती है।

4. जल संरक्षण की पारंपरिक प्रणालियाँ– भारत के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में वर्षा जल संचयन और जल प्रबंधन की उन्नत प्रणालियाँ विकसित की गईं।बावड़ी, कुएँ, तालाब, जोहड़, कुंड और आहर-पाइन प्रणाली।भूजल पुनर्भरण को बढ़ावा।सूखा प्रभावित क्षेत्रों में जल उपलब्धता सुनिश्चित।उदाहरण: चाँद बावड़ी तथा राजस्थान की जोहड़ प्रणाली।

5. कृषि एवं भूमि संरक्षण की पद्धतियाँ– प्राचीन भारतीय कृषि प्रकृति के अनुरूप थी।फसल चक्र, मिश्रित खेती, जैविक खादों का उपयोग कृषि वानिकी इनसे भूमि की उर्वरता बनी रहती थी तथा मृदा अपरदन कम होता था। कृषि एवं भूमि संरक्षण का अर्थ है ऐसी कृषि तकनीकों और उपायों को अपनाना, जिनसे भूमि की उर्वरता बनी रहे, मिट्टी का कटाव रुके और प्राकृतिक संसाधनों का सतत उपयोग हो।

प्रमुख पद्धतियाँ:

1. **समोच्च जुताई :** ढलान वाली भूमि पर समोच्च रेखाओं के समानांतर जुताई करके मिट्टी के कटाव को रोका जाता है।
2. **सीढ़ीदार खेती :** पहाड़ी क्षेत्रों में सीढ़ीनुमा खेत बनाकर मिट्टी और पानी का संरक्षण किया जाता है।
3. **फसल चक्र :** अलग-अलग फसलों को बारी-बारी से उगाने से मिट्टी की उर्वरता बनी रहती है।
4. **वृक्षारोपण :** पेड़ लगाने से मिट्टी का कटाव कम होता है और पर्यावरण संतुलित रहता है।
5. **पट्टीदार खेती :** विभिन्न फसलों को पट्टियों में उगाकर मिट्टी को हवा और पानी से होने वाले कटाव से बचाया जाता है।
6. **मेड़बंदी:** खेतों के चारों ओर मेड़ बनाकर वर्षा जल को रोका जाता है और मिट्टी का संरक्षण होता है।
7. **जैविक खाद का उपयोग:** गोबर की खाद, कम्पोस्ट और हरी खाद के प्रयोग से मिट्टी की उर्वरता बढ़ती है।
8. **वर्षा जल संचयन:** वर्षा के जल का संग्रह और उपयोग करके सिंचाई तथा भूजल संरक्षण किया जाता है।

कृषि एवं भूमि संरक्षण की पद्धतियाँ प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण, कृषि उत्पादन में वृद्धि और पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने के लिए अत्यंत आवश्यक हैं। इनका अपनाना सतत विकास की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है।

6. **पशु-पक्षियों का संरक्षण-** कई जीवों को धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व प्रदान किया गया।गाय, नाग, मोर, वानर आदि का संरक्षण।शिकार पर सामाजिक एवं धार्मिक नियंत्रण।जैव विविधता के संरक्षण में सहायता। उदाहरण: भारतीय मोर को विशेष संरक्षण प्राप्त रहा।पशु-पक्षियों का संरक्षण करने के लिए उनके प्राकृतिक आवास, भोजन, जल स्रोत और प्रजनन स्थलों की रक्षा करना चाहिए ताकि उनकी विभिन्न प्रजातियाँ सुरक्षित रह सके और प्रकृति का संतुलन भी बना रहे वन्य जीव संरक्षण करने के लिए वनों और प्राकृतिक आवासों की रक्षा करना। अवैध शिकार और वन्यजीवों के अवैध व्यापार पर रोक लगाना। जल स्रोतों और पर्यावरण को प्रदूषण से बचाना।अधिक से अधिक वृक्षारोपण करना।वन्यजीव अभयारण्यों और राष्ट्रीय उद्यानों का संरक्षण करना।लोगों में वन्यजीव संरक्षण के प्रति जागरूकता बढ़ाना।पशु-पक्षियों का संरक्षण केवल वन्यजीवों की सुरक्षा नहीं, बल्कि पूरे पर्यावरण और मानव जीवन की सुरक्षा भी है। प्रत्येक व्यक्ति को प्रकृति के प्रति जिम्मेदारी निभाते हुए पशु-पक्षियों के संरक्षण में अपना योगदान देना चाहिए।

7. **बिश्नोई समुदाय की पर्यावरणीय परंपरा-** बिश्नोई समुदाय ने 29 नियमों के माध्यम से वन्यजीव और वृक्ष संरक्षण को जीवन का हिस्सा बनाया।हरे वृक्षों की कटाई निषिद्ध।वन्य जीवों की रक्षा अनिवार्य।मरुस्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र का संरक्षण।इस परंपरा से जुड़ा खेजड़ली बलिदान विश्व के प्रारंभिक पर्यावरण आंदोलनों में माना जाता है।

8. **वैदिक और उपनिषदिक दृष्टिकोण-** ऋग्वेद, अथर्ववेद तथा अन्य ग्रंथों में पृथ्वी, जल, वायु और वनस्पतियों के संरक्षण का संदेश मिलता है। 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' पृथ्वी को माता माना गया।प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व की भावना विकसित हुई।संसाधनों के संतुलित उपयोग पर बल दिया गया।

9. **सामुदायिक संसाधन प्रबंधन-** ग्राम समुदाय जलाशयों, चरागाहों और वनों का सामूहिक प्रबंधन करते थे।संसाधनों का न्यायसंगत उपयोग। स्थानीय स्तर पर संरक्षण और निगरानी। प्राकृतिक संसाधनों का दीर्घकालिक संरक्षण। समुदाय द्वारा उपलब्ध प्राकृतिक, आर्थिक, सामाजिक और मानव संसाधनों का मिलकर योजना बनाना, उपयोग करना, संरक्षण करना और उनका न्यायसंगत वितरण सुनिश्चित करना, ताकि सभी लोगों को लाभ मिले और संसाधन भविष्य के लिए भी सुरक्षित रहें।संसाधनों का उचित और टिकाऊ उपयोग।सभी समुदाय के सदस्यों की भागीदारी सुनिश्चित करना।संसाधनों का समान और न्यायपूर्ण वितरण।पर्यावरण संरक्षण और भविष्य की आवश्यकताओं का ध्यान रखना।स्थानीय विकास और लोगों के जीवन स्तर में सुधारप्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण होता है।समुदाय में सहयोग और जिम्मेदारी की भावना बढ़ती है।संसाधनों के दुरुपयोग में कमी आती है।सतत विकास को बढ़ावा मिलता है।

स्थानीय स्तर पर रोजगार और आजीविका के अवसर बेहतर हो सकते हैं।सामुदायिक संसाधन प्रबंधन वह प्रक्रिया है जिसमें समुदाय के लोग मिलकर अपने संसाधनों का योजनाबद्ध, न्यायसंगत और टिकाऊ उपयोग तथा संरक्षण करते हैं।

निष्कर्ष - भारतीय ज्ञान परंपरा में पारिस्थितिकी तंत्र संरक्षण की पद्धतियाँ वैज्ञानिक समझ, सांस्कृतिक मूल्यों और सामुदायिक सहभागिता पर आधारित थीं। पवित्र उपवन, जल संरक्षण प्रणालियाँ, वृक्ष पूजा, जैविक कृषि तथा सामुदायिक संसाधन प्रबंधन जैसी परंपराएँ आज भी पर्यावरणीय चुनौतियों के समाधान में प्रासंगिक हैं। वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता ह्रास और संसाधनों के अति-दोहन जैसी समस्याओं से निपटने के लिए इन पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों का पुनर्मूल्यांकन और समावेशन अत्यंत आवश्यक है।भारतीय ज्ञान परंपरा प्रकृति और मानव के बीच संतुलित संबंध स्थापित करने का ऐसा मॉडल प्रस्तुत करती है जो सतत विकास और पारिस्थितिकी संरक्षण के लिए आज भी मार्गदर्शक है।प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा सिखाती है कि प्रकृति का 'दोहन' (सस्टेनेबल इस्तेमाल) होना चाहिए, 'शोषण' (ओवर-एक्सप्लॉइटेशन) नहीं। आज दुनिया जिस 'सतत विकास' की बात कर रही है, वह दर्शन भारत के वेदों, उपनिषदों और आम जीवन में हजारों साल पहले से मौजूद था।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. डॉ. आनंद पाटील, आले -भारतीय ज्ञान परंपरा, जनहित राष्ट्र हित की सिद्धि, सब, लोग, फरवरी,2020.
2. तुलसीदास रामचरितमानस।
3. श्रीवास्तव, राजीव कुमार, पर्यावरण संरक्षण की भारतीय परंपरा, आर्यावर्त शोध विकास, पत्रिकाजून 2019.
4. बर्केस, फिकरेट (2026). पवित्र पारिस्थितिकी: स्वदेशी ज्ञान और संरक्षण से सीखना (5वां संस्करण). लंदन: टेलर एंड फ्रांसिस।

****